इकाई 12 संप्रभुता

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देष्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 संप्रभुता की प्रकृति

12.3 संप्रभुता क्या है?

12.4 संप्रभुता के लक्षण

12.5 संप्रभुता संबंधी धारणा का विकास

12.6 विधिसंगत एवं राजनीतिक संप्रभुता

12.7 संप्रभुता का स्थान निर्धारण

- 12.7.1 राजतंत्र की संप्रभुता
- 12.7.2 प्रजा की संप्रभुता
- 12.7.3 संप्रभुता : संविधान-निर्माण शक्ति के रूप में
- 12.7.4 कानून-निर्माण शक्ति संबंधी संप्रभुता

12.8 डी ज़ॉर और डी फैक्टो संप्रभुता

12.9 संप्रभुता विषयक सीमाएँ

- 12.9.1 नैतिक सीमाएँ
- 12.9.2 संवैधानिक सीमाएँ
- 12.9.3 अन्तरराष्ट्रीय सीमाएँ

12.10 संप्रभुता-सिद्धांत विषयक आलोचनाएँ

12.11 सारांष

12.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.13 बोध प्रष्नों के उत्तर

12.0 उद्देष्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे राजनीति-विज्ञान में प्रयुक्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवधारणा के विषय में, यथा संप्रभुता यानी संप्रभुता के विषय में। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि :

- संप्रभुता की अवधारणा को समझ सकें और उसकी प्रकृति व लक्षणों को जान सकें;
- इस सिद्धांत की उत्पत्ति को तलाष कर सकें और इसका स्थापन व विविधताओं को स्पष्ट कर सकें;
- संप्रभुता की अवधारणा के विरुद्ध अभिलक्षित तीखी आलोचनाओं का विवेचनात्मक रूप में मूल्यांकन कर सकें; तथा
- आज के विष्व में इस अवधारणा का औचित्य जान सकें।

12.1 प्रस्तावना

इससे पहले कि हम संप्रभुता की संकल्पना का विष्लेषण करें, हमें राजनीति के अर्थ, राजनीति के साथ अन्य सामाजिक विज्ञानों के संबंध एवं राज्य के अर्थ के बारे में पूरी समझ

होनी चाहिए। उदारवादी दृष्टिकोण राजनीति को विवाद निपटाने, एकता कायम करने हेतु एक सामाजिक प्रक्रिया मानता है : समाज की आम भलाई के लिए और शान्तिपूर्व। मार्क्सवादी दृष्टिकोण राजनीति को समाज में वर्ग-सम्बंधों एवं वर्ग-संघर्षों का एक अध्ययन मानता है। इसी प्रकार, राज्य को एक संस्था के रूप में लिया है, जो कि समाज में ये सभी कार्य निष्पादित करता है। एक बुनियादी प्रष्न यहाँ यह उठता है – राज्य ये सभी कार्य किस प्रकार करता है? इस प्रष्न के उत्तर में, यह कहा जा सकता है कि वह ये सभी कार्य किसी प्राधिकार अथवा अवपीड़क शक्ति की मदद से करता है, जिसे संप्रभुता कहा जाता है। यदि समाज में विवाद हैं और इन विवादों को सुलझाने के लिए एक अवपीडक शक्ति है, तो अनेक प्रश्न उठते हैं– यह किसी अवपीड़क शक्ति क्या है? इसका स्वभाव क्या है? इसके आधार क्या हैं? एक संकटग्रस्त, वर्ग-विभाजित समाज में यह एकता कैसे कायम कर सकती है? राज्य को यह सम्पूर्ण शक्ति रखनी चाहिए अथवा इसको समाज की अन्य संस्थाओं के साथ बाँट लेना चाहिए? ये सभी प्रष्न किसी न किसी तरीके से संप्रभुता के मुद्दे से जुड़े हैं, जिनको हम इस इकाई में देखेंगे।

12.2 संप्रभुता की प्रकृति

राज्य का राज्य से, किसी राज्य का उसके नागरिकों से, और एक नागरिक का दूसरे नागरिक से संबंध केवल उस लक्षण की एक अतिरिक्त चर्चा के बाद ही समझा जा सकता है, जो राज्य को अन्य सभी संगठनों से अलग करता है, उसकी संप्रभुता। एक अन्य कसौटी है कानून की प्रकृति, चूँकि उस रूप में ही राज्य की संप्रभुता स्वयं को अभिव्यक्त करती है।

संप्रभुता की अवधारणा ही आधुनिक राजनीतिक-विज्ञान का आधार है। यह सभी कानूनों की वैधता में निहित होती है और सभी अन्तरराष्ट्रीय संबंधों को तय करती है। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार हो सकती है : जब लोगों का एक स्वतंत्र समूह एक ऐसी सरकार के माध्यम से संगठित किया जाता है जो कानून बनाती व लागू करती है, तो राज्य अस्तित्व में आता है। इस समूह के भीतर इच्छा और शक्ति की सर्वोच्चता आवष्यक है। इसको अपने में अवष्य ही एक ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का निकाय शामिल करना चाहिए जिनके आदेषों का पालन होता हो और जो, आवष्यकता पड़ने पर, बल-प्रयोग के माध्यम से उन आदेषों को निष्पादित करा सकें। ऐसा व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का निकाय संप्रभुता का प्रयोग करता है, और ऐसे आदेषों को कानून कहा जाता है। स्पष्ट रूप से, संप्रभुता के लिए कोई भी कानूनी सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि उसका मतलब होगा एक उच्चतर कानून-निर्मातृ निकाय, और पलटकर वही संप्रभु होगा। राज्य, इसी कारण, कानूनी रूप से संप्रभु होता है।

असीमित कानूनी शक्ति रखते हुए, राज्य व्यक्तियों को कुछ निष्चित अधिकार व विषेषाधिकार प्रदान करता है और अपनी स्वयं की गतिविधियों हेतु सीमाएँ निर्धारित करता है। एक राज्य अपने प्रदेषों को एक बड़े पैमाने पर स्वायत्तता दे सकता है अथवा अपने स्थानीय प्रखण्डों को व्यापक शक्तियाँ दे सकता है, और यदि वह किसी भी समय इन प्रतिनिधि शक्तियों को कानूनन वापस ले सकता हो तो भी संप्रभुता अपने पास रख सकता है।

आन्तरिक व बाह्य संप्रभुता के बीच प्रायः भेद किया जाता है। लेखक, खासकर अन्तरराष्ट्रीय कानून पर लिखने वाले, कभी-कभी आंतरिक संप्रभुता के संबंध में कहते हैं कि यह एक राज्य के क्षेत्रफल की जनसंख्या के संदर्भ में कानून बनाने और लागू करने का किसी अधिकार है, और बाह्य संप्रभुता अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने व कायम रखने

का अधिकार, जिसमें युद्ध-घोषणा व शान्ति-प्रयास शामिल हैं। बाह्य संप्रभुता संबंधी अवधारणा आपत्तिजनक है, क्योंकि इसका निहितार्थ है कि एक राज्य अन्य राज्यों के सामने संप्रभु अधिकार रखता है, जो कि सत्य नहीं है। अन्य लेखक बाह्य संप्रभुता को किसी अन्य राज्य कार्रवाई संबंधी अपनी पूर्ण स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबंध लगाने पर राज़ी होते हैं, उनकी संप्रभुता को समाप्त नहीं करते, क्योंकि उनको लागू करने हेतु कोई भी प्रकार कानूनी बाध्यकारी प्राधिकरण नहीं होता। यदि कोई राज्य आन्तरिक रूप से संप्रभु है, तो उसे बाह्य रूप से कानूनन आवष्यक होना अनिवार्य है। संप्रभुता में, सटीक रूप से कहे जाने पर, एक राज्य के उसके अधिवासियों के साथ आन्तरिक संबंध होते हैं; यह एक संवैधानिक कानून का शब्द है, न कि अन्तरराष्ट्रीय कानून का। यह एक कानूनी अवधारणा है और इसमें सिर्फ़ सकारी कानून होते हैं।

अन्तिम विष्लेषण में, संप्रभुता या तो बल-प्रयोग अथवा सर्वसम्मति पर अथवा इन दोनों के मिश्रण पर आधारित होती है। लोग आज्ञापालन करते हैं क्यों कि वे मानते हैं कि ऐसा करना वान्छित है। निरंकुष राज्यों में, लोग भयवष आज्ञापालन करते हैं, जबकि लोकतांत्रिक राज्यों में बहुसंख्य लोग सर्वसम्मति से आज्ञापालन करते हैं। बल-प्रयोग सिर्फ़ कुछेक लोगों के लिए चाहिए होता है जो आज्ञापालन से इंकार करते हैं। अपनी आज्ञाओं के समर्थन एवं आज्ञापालन की हेतु बल रखना ही राज्य को अन्य सभी संस्थाओं से अलग करता है और उसे संप्रभु बनाता है।

12.3 संप्रभुता क्या है?

राज्य की अवधारणा की भाँति ही, संप्रभुता भी ऐतिहासिक परिस्थितियों में परिवर्तनों से गुज़री है। 18वीं व 19वीं शताब्दियों के दौरान, संप्रभुता कानूनी अवधारणा मतलब पूरा करती होगी, परन्तु हमारे समय में नहीं करती। राज्य अकेले कानून अथवा आज्ञा के आधार पर अपना काम नहीं चला सकता। आज पुराने जमाने के शासक की नितांत सत्ता के स्थान पर संप्रभुता लागू करने हेतु जनमत पर काबू करने की शक्ति आ गई है। इसकी वैधता सामाजिक विवाद निपटाने, व्यवस्था लागू करने और समुदाय के आम हित साधने हेतु उसकी क्षमता पर अधिक निर्भर है। यह बात राज्य के प्राधिकार संबंधी एक उचित समझ प्रदान करती है। इसका प्राधिकार उसकी अवपीड़क शक्ति की बजाय आज्ञापालन करने हेतु जनसाधारण की इच्छा पर अधिक निर्भर होता है। यही है संप्रभुता का उदारवादी अर्थ। तथापि, उदारवादी जन राज्य की अवपीड़क शक्ति को पूरी तरह नहीं ठुकराते, और यह मत रखते हैं कि सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को बचाने के लिए, आावष्यक होने पर, इसका प्रयोग विधिसंगत हो सकता है।

बहरहाल, संप्रभुता का एक और दृष्टिकोण भी है, जो संप्रभु को समाज के एक वर्ग-विषेष का दूसरे पर अधिकार मानता है। यह विचार समाज के एक वैज्ञानिक विष्लेषण पर आधारित है और मार्क्सवादी दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, राज्य और संप्रभुता एक आर्थिक रूप से उस प्रबल वर्ग की सत्ता है, जो उसे अपने हित वृद्धि के लिए प्रयोग करता है। मार्क्सवाद का सुझाव है कि एक पूँजीवादी राज्य में संप्रभुता को एक समाजवादी क्रांति द्वारा नष्ट कर किया जाना चाहिए और इसके स्थान पर कामगार वर्ग की संप्रभुता लानी चाहिए – यथा, सर्वहारा की तानाषाही। एक वर्गरहित समाज में राज्य समाप्त हो जाएगा। एक वर्ग-रहित समाज में, संप्रभुता, जो कि एक वर्ग सत्ता है, का कोई स्थान नहीं होगा।

वर्तमान शताब्दी में, कुछ बहुवादियों व आचरणषास्त्रियों (Behaviouralists) ने संप्रभुता की एक नई व्याख्या दी है। बहुवादी अवधारणा के अनुसार, किसी समाज में सत्ता राज्य

में केन्द्रीकृत नहीं होती, बल्कि विभिन्न संस्थाओं व समूहों में बँटी रहती है। आचरणषास्त्रियों का कहना है कि एक लोकतांत्रिक समाज में, सत्ता एक प्रतिस्पर्धारत अनेक संख्यक अभिजात वर्ग द्वारा बाँट ली जाती है। इस प्रकार, एक लोकतांत्रिक सत्ता को विकीर्ण माना जाता है, न कि केन्द्रीकृत।

बोध प्रश्न 1

नोटः i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों के सुझावों के लिये इकाई का अंत देखें।

1) संप्रभुता क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) संप्रभुता की प्रकृति संबंधी व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.4 संप्रभुता के लक्षण

इकाई के इस भाग में, हम संप्रभुता-संबंधी अनेक मुख्य लक्षणों पर चर्चा करेंगे, जो राज्य के आज्ञापालन हेतु नागरिकों के लिए उसे अनिवार्य बनाते हैं। संप्रभुता के लक्षण संक्षेप में निम्न प्रकार कहे जा सकते हैं:

1) **चरमता** : इसका अर्थ है कि राज्य में इससे बढ़कर कोई भी वैध सत्ता नहीं हो सकती, और राज्य की सर्वोच्च कानून-निर्मात्री सत्ता के लिए कोई कानूनी सीमा नहीं हो सकती। यह इस अर्थ में चरम है कि यह किसी अवरोध, कानूनी अथवा कोई अन्य, के अधीन नहीं है। एक सभ्य समाज में, यद्यपि संप्रभु द्वारा पारित कानून सभी संस्थाओं व नागरिकों पर बाध्यकारी होते हैं, फिर भी इसका मतलब यह नहीं कि राज्य की संप्रभुता पर कोई व्यावहारिक प्रतिबंध नहीं है। कुछ निष्चित स्वयं-स्थापित सीमाओं, आन्तरिक अथवा बाह्य, को कानूनन प्रतिबंधों के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। ये सीमाएँ राज्य की "चरम" प्रकृति द्वारा काबू में रखी जाती हैं।

2) **सर्वव्यापकता:** राज्य की संप्रभुता राज्य में हर व्यक्ति और व्यक्तियों की हर संस्था तक विस्तृत होती है। राजनयी प्रतिनिधियों के उदाहरण में प्रतीतमान अपवाद (exceptional) है एक अन्तरराष्ट्रीय षिष्टाचार, जिसे राज्य किसी भी समय हटा सकता है।

3) **स्थायित्व:** राज्य की संप्रभुता तब तक कायम रहती है जब तक कि राज्य स्वयं अस्तित्व में रहता है। वे जो इसका प्रयोग करते हैं बदल सकते हैं, और सम्पूर्ण राज्य पुनर्संगठित हो सकता है; परन्तु संप्रभुता, कहीं भी रहे, डटी रहती है। सिर्फ़ राज्य के विध्वंस द्वारा ही संप्रभुता को नष्ट किया जा सकता है।

4) **अभाज्यता:** इसका निहितार्थ है कि किसी राज्य में सिर्फ एक ही संप्रभुता हो सकती है। संप्रभुता को विभाजित करना उसे नष्ट करना है। उसकी शक्तियों का प्रयोग विभिन्न सरकारी अंगों में विभाजित किया जा सकता है, परन्तु संप्रभुता एक इकाई है, ठीक वैसे जेसे राज्य एक इकाई है। संख्या में उतने में ही राज्य हो सकते हैं जितने कि संप्रभुताएँ। किसी विभाजित संप्रभुता का अर्थ है, एक शाब्दिक विरोध।

संप्रभुता-संबंधी अभाज्यता सिद्धांत की विभिन्न दृष्टिकोणों से तीखी आलोचना हुई है। अन्तरराष्ट्रीय कानून पर लिखने वाले संप्रभु राज्यों का पक्ष लेते हैं, जैसे कि संरक्षित राज्य। विभाजित संप्रभुता संबंधी सिद्धांत अधिकतर अमेरिकी विचारकों द्वारा रखा गया, जो संयुक्त राज्य अमेरिका को राष्ट्रीय सरकार को प्रदत्त अधिकारों के लिहाज से संप्रभु के रूप में, और राज्यों को उनके लिए आरक्षित उन अधिकारों के लिहाज से संप्रभु मानते थे। जर्मन लेखकों ने जर्मन साम्राज्य के बनने के समय इस सिद्धांत को पुनरुज्जीवित किया, परन्तु अब इसको छोड़ दिया गया है। किसी संघीय व्यवस्था में विभाजित राज्य में विद्यमान संप्रभुता संप्रभुता नहीं है, बल्कि विभिन्न सरकारी अंगों के बीच एक संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार वितरित अपनी विभिन्न शक्तियों का प्रयोग संप्रभुता है। अभी हाल में, विभाजित संप्रभुता सिद्धांत उन बहुवादियों द्वारा पुनरुज्जीवित किया गया है जो इस बात से इंकार करते हैं कि राज्य अकेले ही संप्रभु है और जिनका कहना है कि राज्य में अन्य संस्थाएँ, जैसे कि चर्च अथवा आर्थिक समूह, अपने विषिष्ट हितों के विषय पर संप्रभु हैं।

12.5 संप्रभुता संबंधी धारणा का विकास

संप्रभुता की धारणा का संबंध अरस्तू से जोड़ा जा सकता है, जिसने राज्य की 'सर्वोच्च शक्ति' के विषय में लिखा। रोम के वकीलों व मध्यकालीन लेखक, हालाँकि, संप्रभुता की प्रकृति संबंधी एक कुछ-कुछ अस्पष्ट ओर अस्तव्यस्त धारणा रखते थे। मध्य युग में, आधुनिक अर्थ में राज्य का अस्तित्व नहीं था। सामन्तवाद एक सरकारी व्यवस्था थी जो व्यक्तिगत गठबंधन पर आधारित थी। तथापि, सामन्ती अभिजात्य धर्मयुद्धों व अपने निजी झगड़ों के कारण कमज़ोर हो गए थे। उनकी कमज़ोरी का लाभ उठाकर, राज्य अपनी शक्ति व महत्त्व को बढ़ाता रहता था जब तक कि वह राज्य में सर्वोच्च न बन जाए। तदोपरांत, जैसे ही लोगों ने यह अनुभव करना शुरू कर दिया कि सरकार एक स्वामी की बजाय एक एजेंट है, संप्रभुता राज्य की बजाय स्वयं राज्य में लागू कर दी गई।

उदयीमान राष्ट्रीय राज्य व उसके विभिन्न आंतरिक व बाह्य प्रतिद्वन्द्वियों–सामन्ती शासकों, पोप समुदाय व पवित्र रोमन साम्राज्य – के बीच संघर्ष ने ही संप्रभुता संबंधी आधुनिक सिद्धांत को जन्म दिया। 16वीं सदी में ज़ां बोंदा प्रथम लेखक थे जिन्होंने संप्रभुता की प्रकृति व लक्षणों पर विस्तार से चर्चा की। राज्य को उसके सभी नागरिकों पर सर्वोच्च और किसी भी प्रकार के बाह्य दबावों से युक्त माना गया। इस धारणा को आगे हॉब्स द्वारा विकसित किया गया जिन्होंने इसकी निरंकुष शक्तियों को सही ठहराया। रूसो भी सहमत